AFR

बिलासपुर छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय

द्वितीय अपील संख्या 115/2010

शंकर प्रसाद आ. गुरु प्रसाद, उम्र लगभग 53 वर्ष
निवासी ग्राम सुलसुली (चांदो), आरक्षी केंद्र बसंतपुर,
तहसील पाल जिला सरगुजा, छत्तीसगढ़.

--- अपीलकर्ता/वादी

विरूद्ध

1. राधेश्याम पुत्र देवशरण, आयु लगभग 66 वर्ष
2. सालिगराम, पुत्र राधेश्याम, आयु लगभग 46 वर्ष
3. रामजी प्रसाद, पुत्र राधेश्याम, आयु लगभग 43 वर्ष
4. प्रमोद कुमार पुत्र राधेश्याम, आयु लगभग 35 वर्ष
5. संजीव प्रसाद, पुत्र राधेश्याम, आयु लगभग 33 वर्ष
   सभी निवासी ग्राम सुलसुली, आरक्षी केंद्र बसंतपुर,
   तहसील पाल, जिला. सरगुजा, छत्तीसगढ़.
6. छत्तीसगढ़ राज्य द्वारा कलेक्टर सरगुजा अंबिकापुर, छत्तीसगढ़

---प्रत्यर्थी/प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए	:-	श्री शक्ति राज सिन्हा, अधिवक्ता
उत्तरदाता 1-5 के लिए	:-	श्री अनुराग दयाल श्रीवास्तव, अधिवक्ता
प्रतिवादी 6/राज्य के लिए	:-	श्री अंकुर कश्यप, पी.एल.

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय के. अग्रवाल
बोर्ड पर निर्णय (वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से)

13/07/2021

1. अपीलकर्ता/वादी द्वारा प्रस्तुत यह द्वितीय अपील दिनांक 06/01/2021 को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया है, जिसमें निम्नलिखित दो सारवान प्रश्न हैं–

    1. क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय का यह मानना न्यायसंगत है कि मूल वादी मुस. भगनिया बाई देवशरण की संपत्ति की हकदार नही थी, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय ने पहले ही इसे देवशरण की संपत्ति का हकदार माना है और प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा निष्कर्ष के उस भाग को प्रश्नगत करते हुए कोई अपील या प्रति आपत्ति पेश नही की गई थी और वह अंतिम हो गया है, एक ऐसा निष्कर्ष दर्ज करके जो रिकार्ड के विपरित है ?

    2. क्या विचारण न्यायालय द्वारा वादी को वसीयत के उचित निष्पादन और सत्यापन को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर समाप्त करना न्यायोचित है जबकि सत्यापन करने वाले गवाहों में से एक सतेंद्र प्रसाद का शपथपत्र पूर्व में ही दिनांक 28.11.2005 को प्रस्तुत किया जा चुका है जिसमें रिकार्ड के विपरीत निष्कर्ष दर्ज किया गया है?

    (सुविधा की दृष्टि से, इसके पश्चात् पक्षकारों को विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत वाद में उनकी स्थिति व क्रम के अनुसार संदर्भित/संबोधित किया जाएगा)

2. देवशरण और सहदेव दो भाई थे। देवशरण का प्रथम विवाह मर्खी से हुआ था तथा उनकी कोई संतान नही थी। दूसरे भाई सहदेव का विवाह भगमनिया बाई से हुआ था। चूंकि देवशरण और मर्खी के विवाह से कोई संतान नही थी तो सहदेव की मृत्यु के बाद उसने अपनी पत्नी मर्खी के जीवनकाल में ही भगमनबाई से दूसरा विवाह कर लिया।

3. वादी का मामला यह है कि देवशरण की मृत्यु के बाद भगमनिया बाई उसकी विधवा होने के नाते देवशरण के स्वामित्व वाली और उसके पास मौजूद संपत्ति की उत्तराधिकारी बनी और उसके बाद दिनांक 21/05/1993 को एक वसीयत (प्र.पी.1) वादी के पक्ष में उसके द्वारा निष्पादित की गई जिसके द्वारा वह वादग्रस्त संपत्ति का स्वामित्वधारी बन गया है और

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

स्वामित्व की उद्घोषणा, विभाजन और कब्जे की प्राप्ति की आज्ञप्ति प्राप्त करने का अधिकारी हो गया।

4. मुकदमे का विरोध करते हुए प्रतिवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में अन्य बातों के साथ–साथ यह भी कहा गया है कि चूंकि देवशरण का विवाह भगमनिया बाई से उनकी पहली पत्नी मर्खी के जीवनकाल में हुआ था अतः उनका विवाह अमान्य था और इसलिए भगमनिया बाई को देवशरण की संपत्ति पर अधिकार नहीं होगा और वह वसीयत (प्र.पी.1) को वादी के पक्ष में निष्पादित करने की हकदार नहीं होगी अतः वादी द्वारा प्रस्तुत वाद निरस्त किया जाना न्यायोचित होगा।

5. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेख में मौजूद मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह विश्लेषित किया गया कि यद्यपि दिनांक 31/12/2005 के अपने निर्णय और डिक्री द्वारा प्रकरण को खारिज कर दिया किंतु विवाद्यक क्रमांक 1 का उत्तर देते समय माना गया कि भगमनिया बाई देवशरण की मृत्यु के बाद उनके स्वामित्व की वाद संपत्ति की उत्तराधिकारी है और वह वादी के पक्ष में वसीयत (प्र.पी.1) निष्पादित करने के लिए सक्षम है परंतु उन्होने यह भी कहा कि उक्त वसीयत विधि अनुसार प्रमाणित नही हुई है। वादी द्वारा अपील प्रस्तुत किये जाने पर विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और आज्ञप्ति की पुष्टि की और वादी द्वारा प्रस्तुत अपील को दिनांक 26/11/2009 के निर्णय और डिक्री के आधार पर निरस्त कर दिया किंतु विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को विवाद्यक क्रमांक 1 के संबंध में पलट दिया और माना कि देवशरण का विवाह उसकी पहली पत्नी मर्खी के जीवनकाल में हुआ था, इस प्रकार ऐसा विवाह हिंदू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 11 सहपठित धारा 5(1) के प्रावधानों के अनुसार शून्य है और भगमनिया बाई को देवशरण के स्वामित्व की संपत्ति नही मिलेगी। अब अपीलकर्ता/वादी के द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत द्वितीय अपील प्रस्तुत की है जिसमें दो विधि के सारवान प्रश्न निहित हैं जो कि इस निर्णय के प्रारंभिक पैराग्राफ में उल्लेखित हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

6. उपस्थित अपीलकर्ता/वादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री शक्ति राज सिन्हा, ने निम्नलिखित प्रस्तुतियां दी हैं –

(i) यह कि, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विवाद्यक क्रमांक 1 के संबंध में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को पलटने में वैधानिक त्रुटि की है जिसमें स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भगमनिया बाई देवशरण की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति को प्राप्त करेगी। प्रतिवादीगण के द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रथम अपील में प्रति–आपत्ति के अभाव में ऐसे निष्कर्ष को पलटा नही जा सकता।

(ii) यह कि, यद्यपि इस अनुक्रम में वसीयत (प्र.पी.1) को सिद्ध करने के लिए इनमें से एक अनुप्रमाणक साक्षी सत्येंद्र प्रसाद का शपथपत्र/साक्ष्य दिनांक 28.11.2005 को प्रस्तुत किया गया था, लेकिन एकाएक साक्ष्य पेश करने का अवसर समाप्त कर दिया गया और कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नही दिया गया जिससे वादी को प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार, दोनो निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और आज्ञप्ति को निरस्त करते हुए इस अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए।

7. उत्तरवादीगण/प्रतिवादीगण की ओर से श्री अनुराग दयाल श्रीवास्तव, विद्वान अधिवक्ता ने उपस्थित होकर, निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दी–

(i) यह कि, विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष पर प्रतिवादी पक्ष की ओर से प्रति आपत्ति दाखिल किया जाना आवश्यक नही था और केवल विचारण न्यायालय द्वारा पारित आज्ञप्ति पर सवाल उठाने के लिए ही प्रति आपत्ति दाखिल करना आवश्यक था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **बनारसी एवं अन्य बनाम रामफल**[1] के मामले में पारित निर्णय के आधार पर इस न्यायालय द्वारा **ठाकूमल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि ममताबाई एवं अन्य विरूद्ध चक्रधर राव भोसले**[2] के मामले में अनुसरण किया गया है।

(ii) यह कि, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विवाद्यक क्रमांक 1 के संबंध में विचारण न्यायालय के निर्णय को सही ढंग से पलटा है और माना कि भगमनिया बाई और देवशरण का विवाह जो देवशरण की प्रथम पत्नी मर्खी के जीवनकाल के दौरान संपन्न हुआ था वह शून्य है इसलिए, भगमनिया बाई, यद्यपि देवशरण की विधवा है परंतु हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के तहत अधिनियमित अनुसूची के अनुसार वर्ग एक के उत्तराधिकारी में नही आती है जो कि देवशरण की विधिक रूप से विवाहिता पत्नी नही थी। इसके अतिरिक्त, चूँकि भगमनिया बाई का देवशरण की संपत्ति पर भी उसका कोई हक नहीं था इसलिए उसे वादी के पक्ष में वसीयत निष्पादित करने का अधिकार भी नही था। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में इस न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और तत्काल अपील निरस्त किए जाने योग्य है।

8. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है जिन्होने उपर दिये गए अपने अपने प्रतिद्वंद्वियों के निवेदनों पर विचार किया है तथा अभिलेखो का अत्यंत सावधानी से अध्ययन किया है।

1 (2003) 9 एससीसी 606
2 2009 (1) सीजीएलजे 150

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

9. इसमें कोई विवाद नहीं है कि वाद संपत्ति देवशरण के स्वामित्व में और उनके पास थी। उसने प्रथमतः मर्खी से विवाह किया था और उसके विवाह से चूँकि उसे कोई संतान नहीं थी इसलिए उसने अपने भाई की विधवा भगमनिया बाई से मर्खी के जीवनकाल में विवाह कर लिया। वादी सहदेव का पोता है जिसके पक्ष में भगमनिया बाई ने वसीयत (प्र.पी.1) दिनांक 21.05.1993 का निष्पादन किया था तथा प्रतिवादी क्रमांक 1 राधेश्याम देवशरण का बेटा है और भगमनिया बाई और प्रतिवादी संख्या 2 से 5 प्रतिवादी क्रमांक 1 के पुत्र हैं। यह भी अविवादित है कि देवशरण और भगमनिया बाई का विवाह प्रथम पत्नी मर्खी के जीवनकाल में हुआ था इसलिए प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 1955 के अधिनियम की धारा 5(i) सपठित धारा 11 के अनुसार, उनका विवाह अमान्य है धारा 5(i) में कहा गया है कि विवाह किसी भी दो हिंदुओं के बीच विवाह संपन्न कराया जाना चाहिए, यदि दोनों में से कोई भी विवाह के पक्षकार विवाह के समय जीवित है तो 1955 के अधिनियम की धारा 5(1) का उल्लंघन का परिणाम अधिनियम की धारा 11 के तहत स्पष्ट रूप से प्रावधानित किया है कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खंड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता है तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा दूसरे (पक्षकार के विरूद्ध) उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा।

10. 1955 के अधिनियम की धारा 5(i) एक ही बार विवाह करने की प्रथा को प्रावधानित करती है जिसमें एक विवाह जो अनिवार्य रूप से स्वैच्छिक है एक पुरुष का एक महिला के साथ आजीवन संबंध अन्य सभी का बहिष्कार करती है। यह अधिनियमित करता है कि न तो पक्षकार के पास विवाह के समय जीवित जीवनसाथी होना चाहिए। शब्द जीवनसाथी का अर्थ है विधिपूर्वक विवाहित पति या पत्नी से है। वैध विवाह संपन्न होने से पहले, ऐसे विवाह में भाग लेने वाले दोनों पक्ष या तो अविवाहित या तलाकशुदा या विधवा या विधुर होना चाहिए और केवल तभी वे वैध विवाह करने के लिए सक्षम हैं। 1955 के अधिनियम की धारा 11 में यह घोषित किया गया है कि विवाह प्रारम्भ होने के बाद सम्पन्न हुआ विवाह 1955 के अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन खंड (i), (iv) और में निर्दिष्ट शर्तें 1955 के अधिनियम की धारा 5 की धारा (v) के अनुसार ऐसे विवाहों के संबंध में यह शून्य और अमान्य है, यह भी प्रावधान है कि शून्यता की घोषणा के लिए आवेदन दिया जा सकता है।

11. **<u>श्रीमती लीला गुप्ता बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य</u>**[3] के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि 1955 के अधिनियम की धारा 5(i) एक ही बार विवाह करने

----

3 (1978) 3 एससीसी 258

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

की प्रथा को प्रावधानित करती है और 1955 के अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद होने वाला कोई भी विवाह किसी भी पक्ष द्वारा प्रस्तुत याचिका के आधार पर 1955 के अधिनियम की धारा 5 के खंड (i), (iv) और (v) के उल्लंघन में अधिनियम की धारा 11 के आधार पर प्रारंभ से शून्य हो जाएगा।

12. इसी प्रकार, **श्रीमती यमुनाबाई अनंतराव आधव बनाम रणंतराव शिवराम आधव** [4] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि 1955 की धारा 5(i) के उल्लंघन में विवाह अकृत और शून्य होगा। यह भी माना गया कि धारा 11 के अंतर्गत आने वाले विवाह प्रारंभ से ही विधि में शून्य और अस्तित्वहीन मानकर अनदेखा किया जाना चाहिए और जब ऐसा प्रश्न उठता है तो याचिका प्रस्तुत करने पर अंतिम घोषणा करने की अनुमति धारा प्रदान करती है। इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से प्रारंभ की गई कार्यवाही में इस तरह की अंतिम सूचना किसी न्यायालय द्वारा पहले से प्राप्त करना आवश्यक नही है। **ए. सुभाष बाबू बनाम आंध्र राज्य एवं अन्य** [5] के मामले में और **एम एम मल्होत्रा विरूद्ध भारत संघ एवं अन्य** [6] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा ऐसा ही प्रस्ताव रखा गया है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

13. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए उपर्युक्त कानूनी विश्लेषण के प्रकाश में, यह यह बात स्पष्ट है कि चूंकि देवशरण कर अपनी प्रथम पत्नी मर्खी से कोई संतान नही थी, उसने मर्खी के जीवनकाल में भगमनिया बाई से विवाह 1955 के अधिनियम की धारा 11 के आधार पर अधिनियम 1955 की धारा 5(1)(i) का उल्लंघन है होने से अकृत और शून्य होगा और देवशरण और भगमनिया बाई का विवाह शून्य है तो भगमनिया बाई का देवशरण की संपत्ति पर उसकी मृत्यु के बाद हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 8 के तहत अधिनियमित अनुसूची के आधार पर अधिकार नही होगा। अधिनियम, 1956 के तहत विधवा भी वर्ग 1 की उत्तराधिकारी होती है और एक हिंदू पुरुष की विधवा को पुत्र, पुत्री तथा अन्य निर्दिष्ट व्यक्तियों के साथ अनुसूची की श्रेणी 1 में विरासत मिलती है लेकिन प्रथम श्रेणी के उत्तराधिकारियों में विधवा से आशय एक ऐसी महिला से है जो कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के तहत वैध रूप से विवाहित है और जिसने उसके पति की मृत्यु के कारण विधवा का दर्जा प्राप्त किया है। यदि उस व्यक्ति के साथ उसका विवाह अमान्य है तो उसके पति की मृत्यु पर उसे हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की अधिनियमित अनुसूची में विधवा का दर्जा नही मिलेगा। वर्तमान मामले में, यह देवशरण की शादी पहले ही हो चुकी है भगमनिया बाई के साथ हुआ विवाह अमान्य था, इसलिए, देवशरण की मृत्यु के बाद भगमनिया बाई को विधवा का दर्जा

----

4 एआईआर 1988 एससी 644
5 (2011) 7 एससीसी 616
6 (2005) 8 एससीसी 351

नही दिया जा सकता और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 8 के अर्थ में वर्ग 1 उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार वह देवशरण की संपत्ति को प्राप्त नही कर सकेगी। नतीजतन, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने सही माना है कि भगमनिया बाई को संपत्ति का उत्तराधिकार पाने का अधिकार नहीं था क्योकि उनका विवाह अधिनियम की धारा 11 के सपठित धारा 5(i) के आधार पर शून्य है।

14. अब प्रश्न यह है कि इस मुद्दे के संबंध में जो विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यक क्रमांक 1 के संबंध में दिया गया है को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष में पलटना उचित था। जैसा कि विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अपीलकर्ता/वादी, उपरोक्त निष्कर्ष प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष विवाद ही नही था इसलिए प्रतिवादियों ने कोई प्रति आपत्ति दर्ज नहीं की। विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया निष्कर्ष अंतिम हो गया था और प्रथम अपीलीय न्यायालय के लिए यह विकल्प नही था कि वह विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य निष्कर्ष पर पहुंचे।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

15. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, आदेश 41 नियम 22 सिविल प्रक्रिया संहिता को दृष्टिगत रखना उचित होगा जो कि प्रावधानित करता है कि–

आदेश XLI
मूल आदेशों से अपील

22. **सुनवाई में प्रत्यर्थी डिक्री के विरूद्ध ऐसे आक्षेप कर सकेगा मानो उसने पृथक अपील की हो –** (1) कोई भी प्रत्यर्थी, यद्यपि उसने डिक्री के किसी भी भाग के विरूद्ध अपील न की हो, न केवल डिक्री का समर्थन कर सकेगा बल्कि यह कथन भी कर सकेगा कि निचले अदालत में उसके विरूद्ध किसी विवाद्यक की बाबत निर्णय उसके पक्ष में होना चाहिए था और डिक्री के विरूद्ध कोई ऐसा प्रत्याक्षेप भी कर सकेगा जो यह अपील द्वारा कर सकता था परन्तु यह तब जब कि उसने ऐसा आक्षेप अपील न्यायालय में उस तारीख से एक मास के भीतर जिसको उस पर या उसके प्लीडर पर अपील की सुनवाई के लिए नियत दिन की सूचना की तामील हुयी थी, या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जिसे अनुज्ञात करना अपील न्यायालय ठीक समझे, फाइल कर दिया हो।

(2) **आक्षेप का प्रारूप और उसको लागू होने वाले उपबन्ध–** ऐसा प्रत्याक्षेप ज्ञापन के प्रारूप में होगा और नियम 1 के उपबन्ध उसे वहां तक लागू होंगे जहां तक वे अपील के ज्ञापनों के प्रारूप और अन्तर्वस्तु से संबंधित है।

(3) [* * *]

(4) जहां किसी ऐसे मामले में जिसमें आक्षेप के ज्ञापन को प्रत्यर्थी ने इस नियम के अधीन फाइल कर दिया है, मूल अपील प्रत्याहृत कर ली जाती है या व्यतिक्रम के लिए खारिज कर दी जाती है वहां ऐसा होने पर भी वह आक्षेप जो ऐसे फाइल किया गया है, अन्य पक्षकारों को ऐसी सूचना के पश्चात् जो न्यायालय ठीक समझे, सुना और अवधारित किया जा सकेगा।

(5) निर्धन व्यक्तियों द्वारा अपीलों से संबंधित उपबन्ध इस नियम के अधीन आक्षेप को भी वहां तक लागू होंगे जहां तक वे लागू किए जा सकते हैं।

16. सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश ने **<u>बनारसी</u>** (सुप्रा) के मामले में प्रति–आपत्ति और प्रति–अपील दायर करने की आवश्यकता को समझाया है और पैराग्राफ 10 और 11 में निम्नानुसार माना गया है कि –

"10. सिविल प्रक्रिया संहिता के 1976 के संशोधान में मामूली अंतर को छोडकर भौतिक या मौलिक परिवर्तन नही किया गया है। संशोधित आदेश 41 नियम 22 उपनियम (1) वह पक्ष जिसके पक्ष में डिक्री मान्य है इसकी संपूर्णता को किसी भी प्रकार की आपत्ति को प्राथमिकता देने के लिए न तो हकदार है और न ही बाध्य है हालाँकि, उपनियम (1) के पाठ में प्रविष्टि की गई किसी निष्कर्ष के विरूद्ध प्रति आपत्ति दायर करना अनुमान्य बनाता है। जिसके परिणामस्वरूप हम जल्द ही बताएंगे। एक प्रतिवादी बिना कोई प्रति आपत्ति किए उस सीमा तक जितनी उसके पक्ष में आज्ञप्ति हुई है अपना बचाव कर सकता है तथापि, यदि वह डिक्री के किसी भी हिस्से पर आक्षेप करने का प्रस्ताव करता है संशोधन में प्रति आपत्ति लिया जाना चाहिए। 1976 के संशोधन द्वारा जोड़ा गया स्पष्टीकरणात्मक है और इसे सक्षम भी बनाया जा सकता है प्रावधान का विश्लेषण करके सटीक जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसमें तीन स्थितियाँ हो सकती हैः–

(i) विवादित डिक्री आंशिक रूप से अपीलकर्ता के पक्ष में और आंशिक रूप से प्रतिवादी के पक्ष में हो ;

(ii) आज्ञप्ति पूर्णतः प्रतिवादी के पक्ष में है यद्यपि एक मुद्दा प्रतिवादी के विरुद्ध निर्णित किया गया है ;

(iii) आज्ञप्ति पूर्ण रूप से उत्तरवादी के पक्ष में हो और सभी विवाद्यको का निष्कर्ष भी प्रतिवादी के पक्ष में हो परंतु निर्णय का एक निष्कर्ष प्रतिवादी के विरूद्ध हो।

11. स्थिति क्र.–1 से संबंधित प्रकरणों में प्रतिवादी के लिए कोई अपील दायर करना या कोई कदम उठाना आवश्यक था यदि वह आज्ञप्ति के उस भाग के विरूद्ध आपत्ति

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

करना चाहता है जो उसके विरूद्ध है हालांकि आज्ञप्ति का वह भाग जो उसके पक्ष में है वह बिना किसी आपत्ति के उसका समर्थन का हकदार है। संशोधन के बाद भी कानून वैसा ही बना रहेगा। स्थिति क्रमांक (ii) और (iii) से संबंधित प्रकरणों में संशोधन से पहले सिविल प्रक्रिया संहिता ने प्रतिवादी को कोई आपत्ति लेने का अधिकार नही दिया और ना ही उसे इसकी अनुमति दी क्योंकि आज्ञप्ति से व्यथित व्यक्ति नही था। संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत, डिक्री में पढ़ें स्पष्टीकरण के प्रकाश में, हालांकि प्रतिवादी के लिए यह अभी भी आवश्यक नही है कि वह अपने प्रतिकूल किसी निष्कर्ष को चुनौती देते हुए कोई आपत्ति उठाए क्योंकि आज्ञप्ति पूरी तरह से उसके पक्ष में है और वह बिना किसी आपत्ति के आज्ञप्ति का समर्थन कर सकता है। उपनियम (1) के पाठ में किए गए संशोधन को नए सम्मिलित स्पष्टीकरण के साथ पढा जाए तो उसे किसी मुद्दे का उत्तर देते समय या किसी मुद्दे से निपटते समय उसके विरूद्ध दर्ज निष्कर्ष पर आपत्ति लेने का अधिकार देता है। ऐसी आपत्ति उठाने का लाभ उपनियम द्वारा स्पष्ट किया गया है। (4) मूल अपील वापिस ले लिए जाने या चूक के कारण खारिज कर दिए जाने के बावजूद प्रतिवादी द्वारा किसी निष्कर्ष पर की गई आपत्ति पर गुण दोष के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है जो उपाय असंशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत प्रतिवादी के लिए उपलब्ध नही था। संशोधन पूर्व युग में मूल अपील को चूक के कारण वापिस लेने या खारिज करने से प्रतिवादी के खिलाफ दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष की सत्यता या अन्यथा पर सवाल उठाने में असमर्थ हो गया। "

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

17. इसी प्रकार का मुद्दा पहले भी विचारार्थ आया था इस न्यायालय द्वारा **ठाकूमल** (सुप्रा) मामले में जिसमें निम्नलिखित विधि के महत्वपूर्ण प्रश्न को अनुच्छेद 6 (सी) में तैयार किया गया था:–

"(सी) क्या प्रतिवादी/वादी, द्वारा प्रति आपत्ति के अभाव में निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष को पलटना न्यायोचित था यह विवाद्यक क्रमांक 6 में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया? "

यह न्यायालय, विधि के सारवान प्रश्न जो कि इस अपील में समान थे को पैराग्राफ 11 में अभिनिर्धारित किया गया:–

"11. अब मैं विधि के महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा करूंगा (सी) *झावरलाल में बोथरा बनाम श्रीमती कुसुमलता अग्रवाल (मृत) द्वारा एल.आर. आई.डी. अग्रवाल एवं अन्य*[7] के माध्यम से, इस न्यायालय ने निम्न प्रकार निर्णय दिया:–

----
7 2007 (3) सीजीएलजे 175

"15. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 22 के वाचन के अंतर्गत किसी भी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं है कि यदि प्रतिवादी, जिसके पक्ष में डिक्री पारित की गई है, यदि डिक्री का समर्थन करना चाहता है तो उसके लिए अन्य पक्षों की अपील में आग्रह खुला है कि किसी भी पहलू पर उसके खिलाफ निचली अदालत का निष्कर्ष उसके पक्ष में होना चाहिए था और प्रतिवादी के लिए प्रति आपत्ति दायर करना अनिवार्य नही है। संहिता के आदेश 41. नियम 22 के तहत लेकिन यह भी कहा जा सकता है कि किसी विवाद्यक के संबंध में निचली अदालत में उसके विरूद्ध निष्कर्ष उसके पक्ष में होना चाहिए था शब्द प्रतिवादी को जिसने डिक्री के किसी भी भाग से अपील नही की हो डिक्री का समर्थन करने और यह कहने की अनुमति देता है कि किसी भी मुद्दे के संबंध में निचली अदालत में उसके खिलाफ निष्कर्ष उसके पक्ष में होना चाहिए था। जब प्रतिवादी इस प्रकार की डिक्री का समर्थन करता है तो उसे कोई प्रति आपत्ति दाखिल करने की आवश्यकता नही होती क्योंकि जब डिक्री उसके पक्ष में होती है तो ऐसी स्थिति में प्रति आपत्ति अकल्पनीय होती है हांलांकि आदेश 41, नियम 22 में तहत उसके पक्ष में डिक्री पारित करने वाले न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के खिलाफ प्रति आपत्ति दाखिल करने से रोका नही गया है लेकिन ऐसा करना उसके लिए अनिवार्य नही है क्योकि डिक्री उसके पक्ष में है और वह तर्कों के दौरान न्यायालय में अपने विरूद्ध किसी भी मुद्दे पर बहस कर सकता है जो उसके पक्ष में होना चाहिए था। मनोहरन चेट्टी बनाम मेसर्स सी.कुमारस्वामी नायडू एंड संस, मद्रास, एआईआर 1980 मद्रास 212, नरेश अहीर बनाम एम.एस.टी. बड़हिया, एआईआर 1985 पटना 287 और जतनी देई वी. उदयनाथ बेहरा, एआईआर 1983 उड़ीसा 252 में भी इसी तरह के दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इसलिए प्रतिवादी/वादी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अपीलकर्ता/प्रतिवादी द्वारा निचली अदालत के समक्ष संहिता के आदेश 41, नियम 22 के तहत प्रति आपत्ति दाखिल न करने के कारण उन्हें दूसरी अपील में ऐसा करने से रोक दिया गया है, अस्वीकार किए जाने योग्य है।"

"इस न्यायालय द्वारा दिया गया उपरोक्त निर्णय विचाराधीन विधि के प्रश्न पर प्रबलता से लागू होता है। तदनुसार संख्या (सी) का निर्णय सकारात्मक रूप से किया जाता है।"

18. उपरोक्त विधि सिद्धांत के मद्देनजर बनारसी (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तथा ठाकूमल (सुप्रा) में इस न्यायालय द्वारा, मेरी राय है कि प्रतिवादियों को विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद्यक क्रमांक 1 के निष्कर्ष के संबंध में प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष किसी भी प्रति आपत्ति को दर्ज करने की आवश्यकता नही थी। इस दृष्टि से मामला तब से है जब भगमनिया बाई को देवशरण की संपत्ति कोई अधिकार नहीं था और उसे उसे वादी के पक्ष में

WebCopy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

वसीयत (प्र.पी. 1) निष्पादित करने अधिकार नही था जिसके बारे में यह कहा जाता है कि यह मामला दो निचली अदालतों में साबित नही हो पाया है।

19. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप विधि के प्रथम सारवान प्रश्न का उत्तर प्रतिवादियों के पक्ष तथा वादी के विपक्ष में दिया गया है और वादी के पक्ष में वसीयत निष्पादित करने के लिए भगमनिया बाई के अधिकार ना होने के मद्देनजर विधि के द्वितीय सारवान प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नही है।

20. द्वितीय अपील, गुण–दोष से रहित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है तथा तदनुसार तथा पक्षकार को अपना खर्च स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया।

21. तदनुसार डिक्री तैयार की जाएगी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

एसडी/–
(संजय के. अग्रवाल)
न्यायाधीश

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यवाहरिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।